ॐ

श्रीदक्षिणामूर्तिर्विजयतेतराम्

कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्

(सानुवाद)

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्रीविभूषित

स्वामी महेशानन्द गिरि जी

महाराज की आज्ञानुसार

मेहता चेरिटेबल प्रज्ञालय ट्रस्ट (रजि.)
104, तिलक बाजार चौक
दिल्ली - 110 006
द्वारा धर्मार्थ वितरित

ॐ

श्रीदक्षिणामूर्तिर्विजयतेतराम्

कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्

(सानुवाद)

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री विभूषित

स्वामी महेशानन्द गिरि जी

महाराज की आज्ञानुसार

मेहता चेरीटेबिल प्रज्ञालय ट्रस्ट (रजि०)
१०४, तिलक बाजार चौक
दिल्ली–११०००६
द्वारा धर्मार्थ वितरित

आमुख

ऋग्वेद की कौषीतकी शाखा के ब्राह्मण भाग में आनेवाली उपनिषद् पर यद्यपि आचार्य शंकरभगवत्पाद का भाष्य उपलबध नहीं है, तथापि शंकरानन्द आदि ने उस पर विस्तृत व्याख्यान किया है, तथा ब्रह्मसूत्र में इस पर अधिकरण रचना भी है। इससे इसका महत्त्व सुस्पष्ट है। इसकी आत्मपुराण में तो अत्यधिक विस्तार से व्याख्या उपलब्ध हैं इसमें इन्द्र का प्रधान उपदेश है कि प्राण से प्रज्ञात्मा के अभेद रूप से मुझ इन्द्र को जानो। प्राणरूप से पैर के द्वारा व प्रज्ञात्मा रूप से मूर्धा के द्वारा परमशिव का प्रवेश है। अतः ज्ञान क्रियात्मक ही हिरण्यगर्भ है। सूक्ष्म शरीर ही बाध होने पर तैजस् कहा जाता है। विराट् की जागृत जीव से जैसे व्यापक होने से एकता है, वैसे ही व्यापक उपाधि वाले हिरण्यगर्भ की है। सूक्ष्म शरीर ही बाध होने पर तैजस् कहा जाता हैं विराट की जागृत जीव से जैसे व्यापक होने से एकता है, वैसे ही व्यापक उपाधि वाले हिरण्यगर्भ से स्वप्न जीव की एकता है, जब इस प्रकार कार्य उपाधि वाले की एकता सिद्ध है तो, जो वैसे भी अव्यक्त होने से भेदग्रस्त नहीं है, उस की एकता की सिद्धि सुगम होने से उस उपाधि वाले प्राज्ञ व ईश्वर की एकता तो अति स्फुट है।

अजातशत्रु व गार्ग्य का संवाद इस उपनिषद् व बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रायः एक से है। इसमें व्यतिरेक द्वारा उपास्य व ज्ञेय की एकता का सुन्दर प्रतिपादन है। इस प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण उपनिषद् के अभिप्राय के ज्ञान से वेदान्तवेद्य का ज्ञान सरलता से हो जाता है। हिन्दी अनुवाद से यह वेदभाषा के अनभिज्ञों का भी उपकारक हो, अतः श्री बिशनदास मेहता ने इसका प्रकाशन किया हैं साधक इससे उपकृत हों।

भगवत्पादीयो
स्वामी महेशानन्दगिरिः

।। शान्तिमन्त्रः ।।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो से वाचि प्रतिष्ठितम्। आविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः।।१।।

ॐ। मेरे वाणी और मन परस्पर एक-दूसरे में प्रतिष्ठित हों। प्रकाशमान परमात्मतत्त्व मुझे साक्षात् हो। वाणी वेद को और मन वेदार्थ को मुझ तक पहुँचाये। सुने हुए को मैं भूलूँ नहीं।।१।।

अनेनाधीतेन अहोरात्रान् सन्दधामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।।२।।

इस पढ़े हुए से मैं दिन-रात एक कर दूँ। मैं ऋत और सत्य ही बोलूँ। परमात्मा मेरी और वक्ता की रक्षा करे। त्रिविध ताप शांत हों।।२।।

अथ प्रथमोध्यायः

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिघाय याजयेति तं हासीनं पप्रच्छ गौतमस्य पुत्रास्ते संवृतं लोके यस्मिन्माधस्यस्यन्यमहो बद्ध्वा तस्य लोके धास्यसीति स होवाच नाहमेतद्वेद हन्ताचार्य पृच्छानीति ।।३।।

गार्ग्य का पुत्र चित्र यज्ञ करने वाला था। उसने यज्ञ कराने के लिए आरुणि को पसंद किया। आरुणि ने स्वयं न जाकर अपने बदले में अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजा। जब वह चित्र के पास आया तब चित्र ने पूछा "तू गौतम का पुत्र है, क्या इस लोक में कोई ऐसा गुप्त स्थान है कि जहां तू यज्ञ करके मुझे स्थापित कर सकेगा? अथवा अर्चिरादि मार्ग से जिस लोक में जाया जाता है उस लोक में क्या तू

मुझे स्थापित करेगा?" श्वेतकेतु ने कहा "यह मैं कुछ नहीं जानता, इसके विषय में आचार्य से पूछूंगा।।३।।

स ह पितरमासाद्य पप्रच्छेतीति मा प्राक्षत्कथं प्रतिब्रवाणीति स होवाचाहमप्येतन्न वेद सदस्येव वयं स्वाध्यायमधीत्य हरामहे।।४।।

यह (श्वेतकेतु) अपने पिता के पास लौट गया और बोला "चित्र ने मुझसे इस प्रकार पूछा है, मैं इसका क्या उत्तर दूं?" उसके पिता ने कहा "मैं भी यह नहीं जानता, चल हम उसके घर पर चलें, वहां वेदाध्ययन करके उससे ज्ञान प्राप्त करें।।४।।

यन्नः परे ददत्येह्युभौ गमिष्याव इति।। स ह समित्पाणिश्चित्रं गार्ग्यायणिं प्रतिचक्रम उपायानीति तं होवाच ब्रह्मार्होऽसि गौतम यो मामुपागा एहि त्वा ज्ञपयिष्यामीतिं। स होवाच ये वैके चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष आप्यायतेऽथापरपक्षे न प्रजनयत्येतद्वै स्वर्गस्य लोकस्य द्वारं यश्चन्द्रमास्तं यत्प्रत्याह तमतिसृजते य एनं प्रत्याह तमिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति।।५।।

क्योंकि जब अन्य अपने को देता तो प्राप्ति के लिये दोनों चलें। (ज्ञानप्राप्ति में संकोच नहीं करना चाहिये।)" अनन्तर हाथ में समिधा लेकर वह गार्ग्य के पुत्र चित्र के पास गया और कहा 'मैं आप से ज्ञान प्राप्त करने आया हूँ' तब चित्र ने कहा "गौतम! तू ब्रह्मविद्या प्राप्त करने योग्य है (क्योंकि तुझमें अहंकार नहीं है) 'तू मेरे पास आ, मैं तुझे ब्रह्मविद्या का उपदेश करूंगा। चित्र बोला—"जो कोई इस लोक में से जाते हैं वे सब चन्द्रलोक में जाते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्र उन लोगों के प्राणों से पुष्ट होता है परन्तु कृष्ण पक्ष में उनको फिर उत्पन्न नहीं करता। सचमुच चन्द्र स्वर्ग का द्वार है, जिसको इस चन्द्रलोक

की इच्छा नहीं होती उसको वह ऊर्ध्व लोक में भेजता है, परंतु जिसको चन्द्रलोक की इच्छा होती है उसको वह वृष्टि रूप से इस लोक में भेजता है।।५।।

स इह कीटो वा पतंगो वा शकुनिर्वा शार्दूलो वा सिंहो वा मत्स्यो वा परश्वा वा पुरुषो वान्यो वैतेषु स्थानेषु प्रत्यांजायते यथाकर्म यथाविद्यं।।६।।

वहां वह कीट, पतंग, पक्षी, बाघ, सिंह, मत्स्य, रीक्ष, मनुष्य अथवा कोई अन्य स्थानों में प्राणी रूप से अपने कर्म और विद्या के अनुसार धारण करता है।।६।।

तमागतं पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयाद्विचक्षणादृतवोरेत आभृतं पञ्चदशात्प्रसूतात्पित्र्यावतः।।७।।

जब वह जन्म लेता है तब गुरु उसको पूछता है "तू कौन?" तब इसका उत्तर नीचे के समान देना चाहिये "विचक्षण और ऋतु के अधिष्ठाता ऐसे चन्द्र में से रेत एकत्र हुआ था यह चन्द्र शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष को उत्पन्न करता है, वह पितरों का स्थान रूप है।।७।।

तन्मा पुंसि कर्तर्येरयध्वं पुंसा कर्त्रा मातरि मासिषिक्तः स जायमान उपजायमानो द्वादश त्रयोदश उपमासा।।८।।

उस चन्द्र की उत्पत्ति नित्य के हवि में से होती है। रेत रूप मुझको देवताओं ने मनुष्य में रखा। मनुष्य को निमित्त करके देवताओं ने मुझे स्त्री में रखा। उस में से मैं बारह अथवा तेरह मास रूप से अथवा जीवित रूप ये मनुष्य जन्म को प्राप्त हुआ था।।८।।

द्वादशत्रयोदशेन पित्रा संतद्विदेहं प्रतितद्विदेहं तन्म ऋतवो मर्त्यव आरभध्वं।।९।।

सत्य असत्य का ज्ञान जानने के निमित्त बारह अथवा तेरह मास

रूप पिता के साथ जुड़ा था, हे देवताओं! मुझे जीवित योग्य समय तक रहने दो कि जिससे अमृतता को प्राप्त होऊं।।९।।

तेन सत्येन तपसर्तुरस्म्यार्तवोऽस्मि कोऽसि त्वमस्मीति तमतिसृजते।।१०।।

अपने सत्य से - मेहनत और सहनशीलता से मैं काल रूप हूँ, मैं कालके अधीन हूँ, तुम कौन हो?" तब वह कहता "मैं भी तेरे समान हूँ!" पश्चात् वह उसको आगे जाने देता है।।१०।।

स एतं देवयानं पन्थानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्यारोह्रदो मुहूर्ता येष्टिहा विरजा नदी इल्यो वृक्षः सालुज्यं संस्थानमपराजितमानयतन-मिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुं प्रमितं विचक्षणासंध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यादायावयतौ वै च जगत्यम्बाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यस्तमित्थंविदा गच्छति।।११।।

देवयान मार्ग को प्राप्त होकर वह अग्निलोक की तरफ जाता है, उस स्थान से वायु लोक में जाता है। वहाँ से वरुण लोक में, वहां से आदित्य लोक में, वहां से इन्द्र लोक में, वहां से प्रजापतिलोक में और वहां से ब्रह्मलोक में जाता है। ब्रह्मलोक में अर नामका सरोवर, इष्टिह नाम का समय, विरजा नामकी नदी इल्य नामका वृक्ष, सालज्य नामका नगर, अपराजित नामका प्रासाद, इन्द्र (वायु) और प्रजापति (आकाश) द्वारपाल रूप से हैं। ब्रह्म का विभु नामक सुसज्जित कमरा है, विचक्षणा (बुद्धि) उसकी गद्दी है। उत्कृष्ट तेज वाला उसका पलंग है, मानसी नाम की प्रिया, चाक्षुषी नाम का प्रतिबिम्ब है जो पुष्पों के समान जगत् को बुनता है सबकी माता (श्रुति) रूप और अक्षर (श्रुति

ज्ञान) रूप अप्सरायें और ब्रह्मज्ञान में वहन करने वाली नदियां होती हैं।।११।।

तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजा वा अयं नदीं प्रपन्नवानय जिगीष्यतीति।।१२।।

ब्रह्म को जानने वाला आगे बढ़ता है, उस समय ब्रह्मा अपने सेवकों से कहता है—मेरे यश से तुम दौड़कर उससे मिलो, वह विरजा नाम की नदी को फलांग चुका है अब वह कभी भी जरा युक्त नहीं होगा।।१२।।

तं पञ्चाशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः शतमान्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं कणाहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणालंकुर्वन्ति स ब्रह्मालंकारेणालंकृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति।।१३।।

पांच सौ अप्सरायें उसे मिलने को सामने जाती हैं। उनमें से सौ अप्सराओं के हाथों में मालाएं होती हैं, एक सौ अप्सराओं के हाथों में अंजन होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में चूर्ण होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में वस्त्र होता है और एक सौ अप्सराओं के हाथों में जवाहरात होते हैं। वे उसको ब्रह्म के अलंकार से सुशोभित बनाती हैं। ब्रह्म के अलंकारों से अलंकृत और ब्रह्म को जानने वाला ऐसा वह ब्रह्म के समीप जाने लगता है।।१३।।

स आगच्छत्यारं ह्रदं तन्मनसात्येति तमृत्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति स आगच्छति मुहूर्तान्येष्टिहांस्ते।।१४।।

प्रथम वह अर नाम के सरोवर के पास आता है, मन से इस सरोवर का अतिक्रमण करता है। जो वर्तमान समय को जानते हैं वे इस सरोवर के पास आते ही उसमें डूब जाते हैं। पश्चात् वह यज्ञ की इष्टि के

नाश करने वाले मुहूर्तों के पास आता है।।१४।।

अस्मादपद्रवन्ति स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते।।१५।।

वे उसे देखते ही भाग जाते हैं, पीछे वह विरजा नाम की नदी के पास आता है, इसे नदी के मन से अतिक्रमण करता है। इस स्थान पर वह अपने सुकृत और दृष्कृतका त्याग करता है।।१५।।

तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतं तद्यथा रथेन धावयन्रथचक्रे पर्यवेक्षत एवं।।१६।।

उसके प्रिय कुटुम्बी-उपासना करने वाले उसके सुकृत को प्राप्त करते हैं और उसका अप्रिय करने वाले, उसके दुष्कृत को लेते हैं। जैसे रथ में बैठकर जल्दी से गमन करने वाला पुरुष रथ के चक्र की तरफ दृष्टि करता है वैसे ही वह दिन और रात्रि को देखता है।।१६।।

सुकृतदुष्कृते सर्वाणि च द्वन्द्वानि स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मैवाभिप्रैति।।१७।।

इसी प्रकार सुकृत और दुष्कृत तथा सर्व द्वन्द्व भावों को देखता है इस प्रकार सुकृत और दुष्कृत से रहित होकर ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म के प्रति जाता है।।१७।।

स आगच्छति इल्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति स आगच्छति सालुज्यं संस्थानं तं ब्रह्म स प्रविशति आगच्छत्य-पराजितमायतनं।।१८।।

वह इल्य नाम के वृक्ष के पास आता है, उसको ब्रह्म की गंध आती हैं पीछे सालज्य नाम के शहर के पास आता है, उसमें ब्रह्म तेज का प्रवेश होता है, पीछे वह अपराजित महल के पांस आता है।।१८।।

तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छतीन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्मादपद्रवतः स आगच्छति विभुप्रमितं ब्रह्मयश प्रविशति ।।१९।।

उसमें ब्रह्म तेज प्रवेश करता है। पीछे जिस स्थान पर इन्द्र और प्रजापति द्वारपाल हैं वहां आता है। वे उसे देख कर भाग जाते हैं। वह विभु नाम के कमरे में आता है तब उसमें ब्रह्म का यश प्रवेश करता है।।१९।।

स आगच्छति विचक्षणामासन्दी बृहद्रथन्तरे सामनी पूर्वौ पादौ श्यैत नौधसे चापरौ पादौ वैरूपवैराजे शाक्वररैवते तिरश्ची ।।२०।।

वह विलक्षण नाम की गद्दी के पास आता है। इस गद्दी के पूर्व की तरफ के दो पाद बृहत् और रथंतर नाम के साम हैं। श्यैत और नौधस उसकी पश्चिम तरफ के पाद हैं। विरूप और वैराज साम उसके उत्तर और दक्षिण के कोण हैं और शाक्वर और रैवत साम पूर्व पश्चिम की तरफ के कोण हैं।।२०।।

सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति स आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्क स प्राणस्तस्य भूतं च भविष्यच्च पूर्वौ पादौ श्रीश्चेरा चापरौ बृहद्रथन्तरे अनूच्ये।।२१।।

यह वेदी ज्ञान रूप है। प्रज्ञा से वह सबको देखता है। पीछे वह उत्कृष्ट तेज वाले पलंग के पास आता है। यह पलंग प्राण रूप है, भूत और भविष्य उसके पूर्व पाद हैं, श्री और पृथ्वी उसके पश्चिम पाद हैं।।२१।।

भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्यमृतश्च सामानि च प्राचीनातानं यजूंषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्गीथ उपश्रीः।।२२।।

बृहत् और रथंतर नाम के साम उत्तर और दक्षिण तरफ की पाटी हैं, भद्र और यज्ञायज्ञीय पूर्व और पश्चिम की तरफ की पाटी हैं। ऋक्

तथा यजुष् पूर्व, पश्चिम तरफ की निवार है, यजुष् उत्तर दक्षिण तरफ की निवार है। चन्द्र की किरणें गेंदुआ (कान के नीचे रखने का तकिया) है उद्गीथ चद्दर है।।२२।।

श्रीरुपबर्हणं तस्मिन्ब्रह्मास्ते तमित्थंवित्पादेनैवाग्र आरोहति तं ब्रह्माह कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात्।।२३।।

अभ्युदय तकिया है, इस पलंग पर ब्रह्म विराजता हैं जब एक पैर को ऊपर रख कर ब्रह्म का ज्ञाता ऊपर चढ़ने को जाता है, तब ब्रह्म उससे पूछता है "तू कौन है?" तब उसे नीचे के समान कहना चाहिये।।२३।।

ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्यायै रेतः संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्यात्मभूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात्किं तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ।।२४।।

"मैं काल रूप हूँ, ऋतुओं में जो होता है सो रूप मैं हूँ। मेरी उत्पत्ति आकाश में से है, संवत्सर का रेत रूप, भूत और कारण का तेज रूप, जड, चैतन्य सबका आत्मा रूप और पंच भूतात्मक शबल ब्रह्म के तेज में से मेरा उद्भव है। तू यह आत्मा रूप है, जैसा तू है वैसा मैं हूँ।" ब्रह्म उससे पूछता है "मैं कौन हूँ?" तब कहना चाहिये "तू सत्य रूप है" "सत्य क्या है?" "जो सब (इन्द्रियों) के अधिष्ठाता देवों और प्राणों से भिन्न है। यह ही सत् रूप से है।।२४।।

पाणाश्च यद्देवाश्च तद्यं तदेतया वाचाभिव्याह्रियते सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसीत्येवैनं तदाह तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तम्।।२५।।

जो देव और प्राण हैं सो 'य' रूप है। यह 'सत्य' इस शब्द से

सबसे पहिचाना जाता है। इस प्रकार का सब विश्व है। तू भी सर्व रूप है, इस प्रकार के वेद के मंत्र से कहा जाता है।।२५।।

यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरव्यः। स ब्रह्मेति हि विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महानिति।। तमाह केन पौस्नानि नामान्याप्नोतीति प्राणनेति।।२६।।

यजुष् उदर रूप हैं साम मस्तक रूप है। ऋक् उसकी मूर्ति रूप है इस प्रकार अक्षर ब्रह्म है, उसको ऋषि ब्रह्ममय अथवा महान् रूप से जाने। ब्रह्म उससे पूछता है "मेरे पुलिंग नाम तूने किस प्रकार प्राप्त किये?" वह उत्तर देता है "प्राण से।"।।२६।।

ब्रूयात्केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकनामानीति मनसेति केन गन्धानिति घ्राणेनेति ब्रूयात्केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानिति श्रोत्रोणेति केनान्नरसानिति।।२७।।

"मेरे स्त्री लिंग कें नाम किस प्रकार प्राप्त किये?" तब कहता है "वाणी से"। "मेरे नपुंसक नाम किस प्रकार प्राप्त किये" तब कहता है "मन से"। गंध किससे? "घ्राणेन्द्रिय से"। "रूप किससे?" चक्षु से"। "शब्द किंससे?" "श्रोत्रेन्द्रिय से"। "अन्न का रस किससे?"।।२७।।

जिह्वयेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुखदुःखे इति शरीरेणेति केनानन्दं रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति प्रज्ञयेति प्रब्रूयात्।।२८।।

"जिह्वा से"। "कर्म किससे"? "हाथों से"। "सुख दुख किससे?" "शरीर से"। "आनन्द रति और प्रजा किससे?" "उपस्थेन्द्रिय से"। "गति किससे?" "पग से"। "बुद्धि किससे पहिचानती है?" "प्रज्ञा

से" इस प्रकार उससे कहना चाहिये।।२८।।

तमाहापो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणि चितिर्या व्यष्टिस्तां चितिं जयति तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद।।२६।।

पीछे ब्रह्म उससे कहता है "यह जल मेरा है, उस जल से बना हुआ यह लोक तेरा है।" जिसको इस ब्रह्म ज्ञान होता है वह ब्रह्म में जो सम्पत्ति है, उसको जीतता है और ब्रह्म में जो कुछ शक्ति है वह उसको प्राप्त होती है।।२६।।

●

द्वितीयोध्यायः

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कौशीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गात्रं क्षोत्रं संश्रावयितृ।।१।।

कौषीतकि कहने लगे :— प्राणं ब्रह्म रूप है, प्राण जो ब्रह्म रूप है उसका दूत रूप मन है, वाणी परोसने वाली है। चक्षु शरीर का रक्षक रूप है और श्रोत्र द्वारपाल है।।१।।

यो हवा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वेद दूतवान्भवति यश्चक्षुर्गोप्तृ गोप्तृमान्भवति यः श्रोत्रं संश्रावयितृ संश्रावयितृमान्भवति।।२।।

प्राण रूप ब्रह्म का मन दूत है, ऐसे जो जानता है वह दूत वाला होता है, चक्षु को रक्षक जानने वाला रक्षक वाला होता है। जो श्रोत्र को द्वारपाल जानता है वह द्वारपाल से युक्त होता है।।२।।

यो वाचं परिवेष्ट्रीं परिवेष्ट्रीमान्भवति तस्मै वा एतस्मै प्राणाय ब्रह्मण एताः सर्वा देवता अयाचमाना बलिं हरन्ति तथा एवास्मै सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बलिं हरन्ति।।३।।

जो वाणी को परोसने वाली जानता है वह परोसने वाले से युक्त होता है। इस प्राण रूप ब्रह्म के लिये सब देवता अर्थात् इन्द्रियां न मांगने पर भी बलि लाते हैं इसी प्रकार उसकी उपासना करने वाला नहीं मांगे तो भी सब प्राणी बलि लाते हैं।।३।।

य एवं वेद तस्योपनिषन्न याचेदिति तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वा लब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमश्नीयामिति य एवैनं पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इत्येष धर्मो याचतो भवत्यनन्तरस्त्वेवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति।।४।।

जो इस प्रकार जानता है, उसका परम रहस्य व्रत यह है कि वह किसी से कुछ न मांगे। जैसे एक मनुष्य ग्राम में भिक्षा मांगने जाता है, तब उसको कुछ नही मिलता तब वह ऐसा कह कर बैठता है कि अब मैं भिक्षा में मिला हुआ भक्षण न करूंगा, तब जो लोग भिक्षा देने के लिये मना करते थे वें भी उसको बुलाकर कर देने लगते हैं। जो याचना नहीं करता उसका इस प्रकार का धर्म हैं, परन्तु धन देंने वाले 'हम तुझको देंगे' ऐसा कह कर बुलाते हैं।।४।।

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह पैंग्यस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो वाक्च परस्ताच्चक्षुरारुन्धे।।५।।

पैंग्य बोला :— प्राण यह ही ब्रह्म है। प्राण रूप ब्रह्मको वाणी के पीछे चक्षु आवरण करते हैं, चक्षु के पीछे श्रोत्र आवरण करते हैं। श्रोत्र के पीछे मन आवरण करता है और मन के पीछे प्राण आवरण करते हैं।।५।।

तस्मै वा एतस्मै प्राणाय ब्रह्मण एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बलिं हरन्ति तथा एवास्मै सर्वाणि भूतान्ययाचमानाय बलिं हरन्ति य एवं वेद। यस्योपनिषन्न याचेदिति तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वा लब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमश्नीयामिति य एवैनं पुरस्तात्प्रत्याचीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इत्येष धर्मो याचितो भवत्यनन्तरस्त्वे वैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति।।६।।

देवता-इन्द्रियां न मांगने पर इस प्राण रूप ब्रह्म को बलि लाकर देते हैं। इसी प्रकार प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना करने वाले को नहीं मांगने पर भी प्राणी बलि लाकर देते हैं। ऊपर के समान नहीं मांगने वाले को सब देते हैं।।६।।

अथात एकधनावरोधनं यदेकधनमभिध्यायात्पौर्णमास्यां

वामावास्यां वा शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रेऽग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्योत्पूय दक्षिण जान्वाच्य स्रुवेण वा चमसेन वा कंसेन वैता आज्याहुतीर्जुहोति वाङ्नामदेवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहा प्राणो नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहा चक्षुर्नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहा श्रोत्रं ना देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहा।।७।।

अब उत्तम धनकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं उस उत्तम धनकी इच्छा करने वाला मनुष्य पौर्णिमा या आमावस्या को अथवा शुक्ल पक्ष में किसी शुभ नक्षत्र पर अग्नि सिद्ध करे। अग्नि के चारों ओर की भूमिको झाड़ कर उसके चारों ओर दर्भ बिछावे, जल के छींटे लगावे और दाहिना घोंटू झुका कर स्रुवा से अथवा चम्मच से अथवा कांसे के किसी पात्र से आगे लिखे के अनुसार आहुति दे। "वाणी नाम का देवता अवरोधी (प्राप्त कराने वाला) है, वह मुझको उससे मिला दे, उसके लिये स्वाहा।" "प्राण नाम का देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।" "नेत्र नाम का देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा" "श्रोत्र नामका देवता अवरोधी है, वह मुझको उसके यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।।७।।

मनो नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहा प्रज्ञा नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै स्वाहेत्यथ धूमगन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेनांगायनुविमृज्य वाचयमोऽभि-प्रवृज्यार्थं ब्रुव्रीत दूतं वा प्रहिणुयाल्लभते हैव।।८।।

"मन नामका देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।" "प्रज्ञा नामका देवता अवरोधी है, वह

मुझको उससे यह प्राप्त करादे उसके लिये स्वाहा''। (यह आहुतियां देने के बाद) वह नाक से धुयें को सूंघे और सर्वांग में घृत का लेपन करे, मौन धारण करते हुए (वह पदार्थ जिसके पास हो उसके पास) चला जाय और अपनी इच्छा प्रकट करे अथवा किसी दूत को भेज कर ऐसा करे। उसको अर्थ की प्राप्ति हो जायेगी।।८।।

अथातो दैवःस्मरो यस्य प्रियो बुभूषेद् यस्यै वा एषां वैतेषांमेवैतस्मिन्पर्वण्यग्निमुपसमाधायैतयैवावृतैता आज्याहुतीर्जुहोति।।६।।

अब देवस्मर (दिवताओं से पूर्ण होने वाली कामना) कहते हैं। जिस किसी एक पुरुष को वा स्त्री को अथवा अनेक पुरुषों को वा स्त्रियों को हम प्रिय हों ऐसी किसी को इच्छा हो तो वह ऊपर लिखे हुए मुहूर्त पर बराबर उसी रीति के अनुसार अग्नि में नीचे लिखे मन्त्रों से आहुतियां दें।।६।।

वाचं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा प्राणं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा श्रात्रं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा मनस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा।।१०।।

तेरे वाणी का यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा। तेरे श्रोत्र का मैं अपने में हवन करता हूँ स्वाहा। तेरे मनका यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा।।१०।।

प्रज्ञानं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहेत्यथ धूमगन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेनांगान्यनुविमृज्य वाचंमयोऽभिप्रवृज्य संस्पर्श जिगमिषेदपि वाताद्वा संभाषमाणस्तिष्ठेत्प्रियो हैव भवति स्मरन्ति हैवास्य।११।।

तेरे प्रज्ञान का यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा! (ये आहुतियां

देने के पश्चात्) वह नाक से धूयें को सूंघे और सब अंगों में घृत का लेन करे, मौन धारण करते हुए उससे स्पर्श हो इस प्रकार उसके पास जाने की इच्छा करे अथवा दूर से वैसा कहता हुआ खड़ा रहे। निश्चय यह प्रिय हो जायेगा और वे उसको याद करेंगे।।११।।

अथातः सांयमनं प्रातर्दनमान्तरमग्निहोत्रमित्याचक्षते यावद्वै पुरुषो भासते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राण तदा वाचि जुहोति यावद्वै।।१२।।

अब प्रतर्दन का अनुष्ठान किया हुआ संयमन (निरोधन) कहते हैं—इसी को आन्तर अग्निहोत्र कहते हैं। मनुष्य जब तक बोलता रहता है, तब तक वह श्वास-प्रश्वास नहीं ले सकता।।१२।।

पुरुषः प्राणिति न तावद्भषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोत्येतेऽनन्तेऽमृताहुतीर्जाग्रच्च स्वपंश्च संततमव्यवच्छिन्नं जुहोत्यथ या अन्या।।१३।।

इस समय वह अपने वाणी में प्राण का हवन करता है और जब तक वह श्वास-प्रश्वास करता रहता है तब तक वह अपने प्राण का वाणी में हवन करता है—वह जागता हो या निद्रित हो।।१३।।

आहुतयोऽन्तवत्यस्ताः कर्ममय्यो भवन्त्येतद्ध वै पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं जुहवांचक्रुः।।१४।।

यह कभी न समाप्त होने वाली अखण्ड आहुतियाँ बराबर हुआ करती हैं। सामान्य आहुतियाँ अन्त वाली होती हैं क्योंकि वे कर्म रूप हैं। प्राचीन काल के विद्वान् लोग इस अग्निहोत्र को करते थे।।१४।।

उक्थं ब्रह्मेति ह स्माह शुष्कभृंगारस्तदृगित्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्यायाभ्यर्च्चन्ते तद्यजुरित्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते तत्सामेत्युपासीत।।१५।।

उक्थ ब्रह्म है, ऐसा शुष्क भृङ्गार ने कहा है। यह उक्थ और ऋक् एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। सब प्राणी उसी को श्रेष्ठ मानकर उसकी ही अर्चना करते हैं। वह और यजुर्वेद एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे।।१५।।

सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रेष्ठ्याय सन्नमन्ते तच्छ्रीरित्युपासीत तद्यश इत्युपासीत तत्तेज इत्युपासीत तद्यथैतच्छास्त्राणं श्रीमत्तमं यशस्वितमं।।१६।।

प्राणी उसी को श्रेष्ठ मान के उसका योग करते हैं (ध्यान करते हैं)। वह और साम एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। समस्त प्राणी उसको श्रेष्ठ मानकर उसको नमस्कार करते हैं। यह और ऐश्वर्य एक ही है, ऐसा ध्यान करे, यह और यश एक ही है ऐसा ध्यान करे। यह और तेज एक ही है ऐसा ध्यान करे।।१६।।

तेजस्वितमं भवति तथा एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां श्रीमत्तमो यशस्वितमस्तेजस्वितमो भवति तमेतमैष्टकं कर्ममयमात्मान-मध्वर्युः संस्करोति तस्मिन्यजुर्मयं प्रवयति यजुर्मयं ऋङ्मये साममयमुद्गाता स एष सर्वस्यै त्रयीविद्याया आत्मैष उ एवास्यात्मा एतदात्मा भवति य एवं वेद।।१७।।

जिस प्रकार धनुष सब शस्त्रों में अत्यन्त श्रीयुक्त और अत्यन्त तेजस्वी होता है उसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य समस्त प्राणियों में अत्यन्त श्रीयुक्त, अत्यंत यशस्वी और अत्यंत तेजस्वी होता है। कर्म का साधन रूप समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि ही वह स्वयं है ऐसा अध्वर्यु मानता है और वह यज्ञ का यजुर्भाग उसमें प्रवेश कराता है। होता यजुर्भाग में ऋग् भाग का प्रवेश कराता है। उद्गाता ऋग् भाग में साम भाग का प्रवेश कराता है, वही त्रयी विद्या का आत्मा है, सचमुच वही उसका आत्मा है—यह जो जानता है वह वही हो जाता है।।१७।।

अथातः सर्वजितः कौषीतकेस्त्रीण्युपासनानि भवन्ति यज्ञोपवीतं कृत्वाप आचम्य त्रिरुदपात्रं प्रसिच्योद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठैत वर्गोऽसिपाप्मानं में वृद्धङ्धीत्येतयैवावृता मध्ये सन्तमुद्वर्गोऽसि पाप्मानं म उद्धृङ्धीत्येतयैवावृतास्तं यन्तं संवर्गोऽसि पाप्मानं मे संवृङ्धीति यदहोरात्राभ्यां पापं करोति सं तद्धृङ्क्ते ।।१८।।

जब सर्वजित कौषीतकि (नामक प्रयोग) कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं। यज्ञोपवीत पहन कर और आचमन करके जल के पात्र का तीन बार सिंचन करके उदय होने वाले आदित्य की प्रार्थना करे—"तू वर्ग (दुखों से मुक्त करने वाला) है, मुझे पातकों से मुक्त कर।" इसी प्रकार सूर्य मध्याह्न होने पर वह प्रार्थना करे—"तू दुखों से मुक्त करने वाले में श्रेष्ठ है, मुझे पातकों से मुक्त कर।" इसी प्रकार अस्त समय में सूर्य की प्रार्थना करे—"तू सम्पूर्ण रीति से पातकों से मुक्त करने वाला है मुझे समस्त पातकों से मुक्त कर। इस प्रकार दिन में और रात में किये हुए, समस्त पापों का वह नाश करता है। इसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य भी सूर्य की उपासना करता है और उससे वह दिन और रात में किये हुए सब पातकों का नाश करता है।।१८।।

अथ मासि मास्यमावास्यायां पश्चाच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठे-तैतयैवावृता हरिततृणाभ्यामथ वाक् प्रत्यस्यति यत्ते सुसीमं हृदयमधिचन्द्रमसि श्रितम्।। तेनामृतत्वस्येशानं माहं पौत्रमघं रुदमिति न हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रयन्तीति नु जातपुत्रस्याथाजात-पुत्रस्याह।। आप्यायस्व समेतु ते सन्ते पयांसि समुयन्तु वाजा यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीत्येतास्तिस्र ऋचो जपित्वा नास्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययस्वेति दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृत-मन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते।।१६।।

अब प्रति मास अमावस्या के प्रश्चात पश्चिम में स्थित चन्द्र की

उपासना करे अथवा चन्द्र की ओर दो दूर्वांकुर फेंक कर कहे—"हे मरण रहित आनन्दमय देव चन्द्र में रहे हुए तेरे कोमल हृदय से ऐसा करो कि मुझे मेरे पुत्र के आपत्ति सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न आवे।" उसकी सन्तति उसके आगे कभी नहीं मरेगी जिसके पहिले से पुत्र है उसके सम्बन्ध में यह समझना।। जिसके अभी पुत्र नहीं है उसके सम्बन्ध में कहते हैं—ऐसा मनुष्य आगे लिखी हुई ऋग्वेद की तीन ऋचायें पठन करे—"आप्या यस्व समेतु ते" (ऋ0 १-९१-१६) (हे सोम तेरी समृद्धि हो और तेरे अंगों में सामर्थ्य प्राप्त हो), "सन्तेपयाँसि समुयन्तु वाजा" (ऋ0 १-३१-४) (दूध और अन्न तुझे प्राप्त हो), "यमादित्या अंशुमाप्या ययन्ति" (ऋ0 १-९१-१८) (जिस किरण को सूर्य आनन्दमय बनाता है)। इन तीन ऋचाओं का जप करके वह प्रार्थना करे—"हमारे प्राण, सन्तति और हमारे पशु इनसे (हमारे शत्रुओं को) समृद्ध न कर। जो हमारा द्वेष करते हैं और जिनका हम द्वेष करते हैं उनका प्राण, उनकी सन्तति, उनके पशु इनसे हमारी समृद्धि करे। इस प्रकार मैं दैवी आवृति करता हूँ।" ऐसा कहकर चन्द्र की तरफ दाहिना हाथ ऊंचा करके पुनः दूर्वांकुर प्रदान करे।।१९।।

अथ पौर्णमास्यां पुरस्ताच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता सोमो राजासि विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि प्रजापतिर्ब्राह्मणस्त एकं मुखं तेन मुखेन राज्ञोत्तसि।।२०।।

पौर्णमासी के दिन चन्द्र पूर्व की ओर दिखाई देता है। उसकी इसी प्रकार पूजा करते समय यह प्रार्थना करे—"तू सोम है, राजा है, ज्ञानी है, पंच मुख वाला है, प्रजापति है, ब्राह्मण मेरा एक मुख है उस एक मुख से तू राजाओं को खाता है।।२०।।

तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।। राजा त एकं मुखं तेन मुखेन विशोत्सि तेनैव मुखेन मामन्नदं कुरु।। श्येनस्त एकं मुखं तेन

मुखेन पक्षिणोऽत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।।२१।।

उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला कर। क्षत्रिय तेरा एक मुख है, उस मुख से तू वैश्यों को खाता है। उसी मुख में मुझे अन्न खाने वाला कर। श्येन पक्षी तेरा एक मुख है, उस मुख से तू पक्षियों को खाता है। उसी मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर।।२१।।

अग्निस्त एकं मुख तेन मुखेनेमं लोकमत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। त्वयि पञ्चमं मुखं तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यत्सि तेन मुखेन मामन्नादं करु।। मास्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्ठा।।२२।।

अग्नि तेरा एक मुख है, उस मुखसे तू इस लोक को खाता है। उस मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर। तुझमें पाँचवाँ मुख है उससे तू सब भूतों को खाता है, उससे तू मुझे अन्न खाने वाला कर। हमारे प्राण, हमारी सन्तति, हमारे पशु इनसे तेरा क्षय न हो।।२१।।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षीयस्वेति स्थितिदैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते।।२२।।

जो हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसका प्राण, उसकी सन्तति, उसके पशु इनसे तू क्षीण हो"। इस प्रकार मैं देवों का संचार कराता हूँ, मैं आदित्य का संचार अनुसरता हूँ। ऐसा कह कर दाहिना हाथ ऊंचा करके दूर्वांकुर प्रदार करे।।२२।।

अथ संवेश्यत्र्जायायै हृदयमभिमृशेत्।। यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ।। मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं रुदमिति न हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैति।।२३।।

अब अपनी स्त्री को पास बुलाकर, उसके हृदय को स्पर्श करके

कहे—जो मुझमें तेरे कोमल हृदय में प्रजापति के अर्थ प्रविष्ट हुआ है, उससे कभी नाश न होने वाले आनन्द को प्राप्त हुई, हे सुन्दरी, तुझे पुत्र सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न प्राप्त हो। उसकी सन्तति उसके पहिले कभी नहीं मरेगी।।२३।।

अथ प्रोष्यायन्पुत्रस्य मूर्धानमभिमृशति। गादंगात् संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्।। असाविति नामास्य गृह्णाति। अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।।२४।।

प्रवास करके वापस आने पर पुत्र का मस्तक सूँघे कहे तू मेरे प्रत्येक अवयव से उत्पन्न हुआ है, तू हृदय से उत्पन्न हुआ है, हे पुत्र सचमुख तू मेरी आत्मा है, सो तू सौ वर्ष पर्यन्त जी।" वह उसका नाम लेकर कहे "तू पत्थर हो, तू परशु हो, सोने का डेला हो।।२४।।

तेजो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्।। असाविति नामास्य गृह्णाति। येन प्रजापतिः प्रजाः पर्यगृह्णीतारिष्ट्यै तेन त्वा परिगृह्णाम्यसावित्यथास्य दक्षिणे कर्णे जपति अस्मै प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्नितीन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहीति सव्ये माच्छिथा मा व्यथिष्ठाः शतं शरद आयुषो जीव पुत्र। ते नाम्ना मूर्धानमभिजिघ्राम्यसाविति त्रिरस्य मूर्धानमभिजिघ्रेद् गवां त्वा हिंकारेणाभिहिंकरोमीति त्रिरस्य मूर्धानभिहिंकुर्यात्।।२५।।

हे पुत्र, तू सचमुच तेज है सो तू सौ वर्ष तक जी।" उसका नाम लेकर आलिंगन करते हुए वह कहता है—प्रजापति ने प्राणी मात्र का कल्याण के लिये आलिंगन किया, वैसे ही मैं तेरा आलिंगन करता हूँ। पश्चात् पुत्र के दाहिने कान में यह मन्त्र कहे—"अस्मे प्रयन्धि मघवनृजीषिन् (ऋ० ३-२६-१०) (हि चपल इन्द्र तू इसको दे)" और

बांए कान में कहे—'इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि (ऋ0 २-२१-६) (हे इन्द्र तू श्रेष्ठ द्रव्य दे), पश्चात् तीन बार मस्तक सूँघते हुए कहे" तू हमारा वंश छेद न कर, दुखी न होते हुए सौ वर्ष तक जी। हे पुत्र यह मैं तेरा नाम लेकर तेरा मस्तक सूंघता हूँ।।" पश्चात् "मैं गाय के हुँकार के समान तुझ पर हुँकारता हू", ऐसा कह कर वह पुत्र के मस्तक पर तीन बार हुँकार करे।।२५।।

अथातो दैवः परिमर एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदग्निर्ज्वलत्यथैतन्म्रियते यन्न ज्वलति तस्यादित्यमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।।२६।।

अब देवपरिमर (सब देवताओं का ब्रह्म में लीन होना) कहते हैं—अग्नि जलते हुए ब्रह्म ही प्रकाशता है, वह नहीं जलता है, तब मरता है। उसका तेज सूर्य में जाता है और प्राण वायु में जाता हैं सूर्य प्रकाशता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है।।२६।।

यदादित्यो दृश्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न दृश्यते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्चन्द्रमा दृश्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न दृश्यते तस्य विद्युतमेव तेजो गच्छति वायु प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्विद्युद्विद्योततेऽथैतन्म्रियते यन्न विद्योतते तस्य वायुमेव तेजो गच्छति वायुं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवता वायुमेव प्रविश्य वायौ सृप्ता न मृच्छन्ते तस्मादेव पुनरुदीरत इत्यधिदैवतमथाध्यात्मम्।।२७।।

वह नहीं दीखता तब मर जाता है। उसका तेज चन्द्रमा ही में जाता है, प्राण वायु में जाता है। चन्द्र दीखता है तब ब्रह्म की प्रकाशता है—वह नहीं दीखता तब मर जाता है। उसका तेज बिजली में जाता है और प्राण वायु में जाता हैं बिजली चमकती है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है,

वह नहीं चमकती तब मरता है। उसका तेज वायु में जाता है, और प्राण वायु में जाता है। इस प्रकार यह देवता वायु में प्रवेश करके वायु में रहते हैं, नष्ट नहीं होते। उसी वायु से वे सदा बाहर निकलते हैं– यह देवता सम्बन्धी कथन हुआ, अब शरीर सम्बन्धी कहते हैं।।२७।।

एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्वाचा वदत्यथैतन्म्रियते यन्न वदति तस्य चक्षुरेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्चक्षुषा पश्यत्यथैतन्म्रियते यन्न पश्यति तस्य श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्छ्रोत्रेण शृणोत्यथैतन्म्रियते यन्न शृणोति तस्य मन एव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।।२८।।

मनुष्य वाणी से बोलता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है, जब नहीं बोलता तब मर जाता हैं उसका तेज नेत्र में ही जाता है, प्राण प्राण में जाता है। मनुष्य आंखों से देखता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं देखता तब मरता है। उसका तेज कान ही में जाता है और प्राण में जाता है। अब मनुष्य कान से सुनता है, तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं सुनता तब मर जाता है। उसका तेज मन ही में जाता है, प्राण प्राण में जाता है। मनुष्य मनसे विचार करता है।।२८।।

यन्मनसा ध्यायत्यथैतन्म्रियते यन्न ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवताः प्राणमेव प्रविश्य प्राणे सृप्ता न मूर्च्छन्ते।।२६।।

तब ब्रह्म ही प्रकाशता है जब नहीं विचार करता तब मर जाता हैं उसका तेज़ मन में जाता है और प्राण प्राण में जाता हैं इस प्रकार ये सब देवता (इन्द्रियां) प्राण ही में प्रवेश करके प्राण ही में लीन रहते हैं और नष्ट नहीं होते।।२६।।

तस्माद्धैव पुनरुदीरते तद्यदिह वा एवंविद्वांस उभौ

पर्वतावभिप्रवर्तेयातां तुस्तूर्षमाणौ दक्षिणश्चोत्तरश्च न हैवैनं स्तृण्वीयातामथ य एनं द्विषन्ति यांश्च स्वयं द्वेष्टि त एनं सर्वे परितो म्रियन्ते।।३०।।

उसी प्राण से वे फिर बाहर निकलते हैं। यह दक्षिण और उत्तर के दोनों पर्वत ऐसा जानने वाले को पीस डालने के लिये आगे वढ़ने पर भी नहीं पीस सकेंगे। परन्तु जो उससे द्वेष करते हैं और वे सब जिससे वह द्वेष करता है उसके पास आकर मर जाते हैं।।३०।।

अथातो निःश्रेयसादानं एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमाना अस्माच्छरीरादुच्क्रमुस्तद्दारुभूतं शिश्येथैतद्वाक्प्रविवेश।।३१।।

अव निःश्रेयसादान (प्राणों का श्रेष्ठत्व ग्रहण) कहते हैं, देवता अपनी श्रेष्ठता के लिये वाद करने लगे और शरीर के बाहर निकल गये और शरीर लकड़ी के समान पड़ा रहा। पश्चात् वाणी ने उसमें प्रवेश किया।।३१।।

तद्वाचा वदच्छिश्य एव् अथैनच्चक्षुः प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छिश्य एवाथैतच्छ्रोत्रं प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वच्छिश्य एवाथैतन्मनः प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वन्मनसा ध्यायच्छिश्य एवाथैतत्प्राणाः प्रविवेश तत्तत एव समुत्तस्थौ तद्देवाः प्राणे निःश्रेयसं विचिन्त्य प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय सहैतैः सर्वैरस्माल्लोकदुच्चक्रमुस्ते वायुप्रतिष्ठा आकाशात्मानः स्वर्ययुस्तथा एवैवंविद्वान् सर्वेषां भूतानां प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय सहैतैः सर्वैरस्माच्छरीरादुत्क्रामति न वायुप्रतिष्ठा आकाशात्मा न स्वरेति स तद्भवति।।३२।।

परन्तु वाणी से वोलता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् नेत्र ने प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ और नेत्र से देखता हुआ

भी वह पड़ा रहा। पश्चात् कर्णेन्द्रिय ने प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता, नेत्रों से देखता और कर्णों से सुनता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् मन ने उसमें प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ, नेत्रों से देखता हुआ, कानों से सुनता हुआ और मन से विचार करता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् प्राण ने उसमें प्रवेश किया—तत्काल ही वह उठ खड़ा हुआ। तब प्राण का श्रेष्ठत्व स्वीकार करे प्राण ही एक जानने वाला आत्मा है ऐसा जानकर सब देवता प्राणों के साथ उस शरीर से बाहर निकले और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लीन होकर स्वर्गलोक में गये। ऐसा जानने वाले मनुष्य को प्राणों का श्रेष्ठत्व विदित होता है और प्राण ही प्रज्ञात्मा है ऐसा वह जानता है और इसी प्रकार वह शरीर से बाहर निकलता है और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लय होकर स्वर्गलोक में जाता है।।३२।।

यत्रैतद्देवास्तत्प्राप्य तदमृतो भवति यदमृता देवाः।।३३।।

जिस स्थान में वे देवता होते हैं उस स्थान में वह जाता है इस अवस्था को पहुँचने पर यह जानने वाला मनुष्य उन देवताओं को प्राप्त हुए अमरत्व से अमर हो जाता है।।३३।।

अथातः पितापुत्रीयं संप्रदानमिति चाचक्षते पिता पुत्रं प्रेष्यान्नह्वयति नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्याग्निमुपसमाधायोदकुम्भं सपात्रमुपनिधायाहतेन वाससा संप्रच्छन्नः स्वयं श्येत एत्य पुत्र उपरिष्टादभिनिपद्यत इन्द्रियैरस्येन्द्रियाणि संस्पृश्यापि वास्याभिमुखत एवासीताथास्मै संप्रयच्छति वाचं मे त्वयि दधानीति पिता वाचं ते मयि।।३४।।

अव आगे पिता पुत्रीय सम्प्रदान (पिता का पुत्र को देने का उपदेश), कहते हैं—(पिता मरते समय अपने पुत्र को बुलाता है) उसके पहले

घर में नयी घास विछाकर, अग्नि सिद्ध करके, उसके पास पात्रों के साथ पानी का घड़ा रखकर श्वेत वस्त्र पहन करके और कोरा कपड़ा ओढ़कर आ बैठता है और पुत्र के ऊपर झुकता है और अपने इन्द्रियों से उसकी इन्द्रियों को स्पर्श करता है अथवा वह उसके आगे बैठकर यह उपदेश करे—"मेरी वाणी तुममें स्थित हो।" पुत्र कहे "तुम्हारी वाणी मैं ग्रहण करता हूँ। ।३४ । ।

दध इति पुत्रः प्राणं में त्वयि दधानीति पिता प्राणं ते मयि दध इति पुत्रश्चक्षु में त्वयि दधानीति पिता चक्षुस्ते मयि दध इति पुत्रः श्रोत्रं में त्वयि दधानींति पिता श्रोत्रं ते मयि दध इति पुत्रो मनो में त्वयि। ।३५ । ।

पिता कहे, "मेरा प्राण तुझमें प्रविष्ट हो।" पुत्र कहे, "तुम्हारा प्राण मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरे नेत्र तुझमें स्थित हों" पुत्र कहे, "तुम्हारे नेत्र मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा कर्ण तुझमें प्रविष्ट हो।" पुत्र कहे "तुम्हारे कर्ण अपने में ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा अन्न रस तुझमें स्थित हो।" । ।35 । ।

दधानीति पिता मनस्ते मयि दध इति पुत्रोऽन्नरसान्मे त्वयि दंधानीति पितान्नरसांस्ते मयि दध इति पुत्रः कर्माणि में त्वयि दधनीति पिता कर्माणि ते मयि दध इति। ।३६ । ।

पुत्र कहे, "तुम्हारे अन्न रस को अपने में ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मैं अपने कर्म तुझको देता हूँ। पुत्र कहे, "मैं तुम्हारे कर्म अपने में ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मैं अपने सुख दुःख तुझमें प्रविष्ट कराता हूँ। ।३६ । ।

पुत्रः सुखदुःखे मे त्वयि दधानीति पिता आनन्दं रतिं प्रजातिं ते मयि दध इति पुत्र इत्यां में त्वयि दधानीति। ।३७ । ।

पुत्र कहे, "तुम्हारे सुख दुःख मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे "मेरा आनंद, संतोप तुझे प्राप्त हो।" पुत्र कहे, "तुम्हारा आनन्द, सन्तोष और सन्तति अपने में ग्रहण करता हूँ।।३७।।

पिता इत्यां ते मयि दध इति पुत्रो धियो विज्ञातव्यं कामान्मे त्वयि दधानीति पिता धियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दध इति पुत्रोऽथ दक्षिणावृदुपनिष्क्रामति तं पितानुमन्त्रयते यशोब्रह्मवर्च-समन्नाद्यं कीर्तिस्त्वा जुषतामित्यथेतरः सव्यमसमन्ववेक्षते पाणि-नान्तर्धाय वसनान्तेन वा प्रच्छाद्य स्वर्गांल्लोकान्कामानवाप्नुहीति स यद्यगदः।।३८।।

पिता कहे, "मेरा गमन तुझमे होने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारा गमन मैं अपने में कराता हूँ।" पिता कहे "मेरा मन तुझमें रहने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारा मन मैं मुझमें प्रविष्ट कराता हूँ।" पिता कहे, "मेरी प्रज्ञा तुझमें रहने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारी प्रज्ञा को मैं ग्रहण करता हूँ।" यदि वह वहुत वीमार हो तो "मेरे प्राण तुझमें रहने दे" इतना कहे और पुत्र "तुम्हारे प्राण मैं अपने में ग्रहण करता हूँ" ऐसा उत्तर दे। पश्चात् दाहिने नेत्र से पिता को देखते हुए पुत्र पिता को प्रदक्षिणा करते हुए चला जाता है। पिता उसको बुलाकर कहता है "मेरा यश, ब्रह्मवर्चस् और सम्मान तुझे हमेशा प्राप्त हो।" इसके पश्चात् कोई अपने हाथ से अथवा वस्त्र से अपने को ढककर स्कन्ध से पीछे देखे और कहे, स्वर्गलोक तथा सम्पूर्ण इच्छित पदार्थ तुझको प्राप्त हो। इसके पश्चात् यदि पिता अच्छा हो जाय तो वह पुत्र के अधिकार में रहे।।३८।।

स्यात्पुत्रस्यैश्वर्ये पिता वसेत्परिवाव्रजेद्यद्युवै प्रेयाद्यदेवैनं समापयति तथा समापयितव्यो भवति तथा समापयितव्यो भवति।।३९।।

अथवा संन्यास ग्रहण करे। परन्तु यदि मर जाय तो उसकी अंत क्रिया योग्यता के अनुसार कर दे। उसकी क्रिया योग्यता के अनुसार कर दे।।३६।।

तृतीयोध्यायः

ॐ प्रतर्दनो ह वे देवोदासिरिन्द्रस्य प्रिय धामोपजगाम युद्धेन पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वरं ते ददानीति से होवाच प्रतर्दनस्त्वमेव मे वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यस इति।।१।।

दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन युद्ध और पराक्रम से इन्द्र के परम धाम को पहुँचा, उससे इन्द्र ने कहा, "हे प्रतर्दन! मैं तुझे क्या वरदान दूं?" प्रतर्दन ने कहा "आपको जो पसन्द हो जिसको आप मनुष्य के लिये सर्वाधिक हितकारी समझते हों वह वरदान मुझे दीजिये।।१।।

तं हेन्द्र उवाच न वै वरं परस्मै वृणीते त्वमेव वृणीष्वेत्यवरो वै तर्हि किल म इति होवाच प्रतर्दनोऽथो खल्विन्द्रः सत्यादेव नेयाय सत्यं हीन्द्रः स होवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयात् त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनमरुन्मुखान्यतीन्साला-वृकेभ्यः प्रायच्छ बहीः संधा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयान-तृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान्पृथिव्यां कालखाञ्जान् तस्य मे तत्र न लोम च नामीयते स यो मां विजानीयान्नाय केन च कर्मणा लोको मीयते न मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च न चकृषो मुखान्नीलं वेतीति।।२।।

इन्द्र बोला "कोई दूसरेको दिया वरदान स्वयं पसन्द नहीं करता, अतः तू अपने लिये आप ही वरदान मांग।" प्रतर्दन बोला "मुझे पसन्द करने के लिये कुछ है ही नहीं।" इन्द्र ने कभी सत्य का त्याग नहीं किया क्योंकि इन्द्र सत्य रूप है। इन्द्र बोला "तू मुझ ही को जान, मनुष्य के लिये मैं यही उत्तम हित मानता हूँ कि यह मुझे पहिचाने।

त्वष्टा के तीन मस्तक वाले पुत्र को मैंने मार डाला था, वेद से रहित संन्यासियों को मैंने भेड़ियों को दे दिया। अनेक संधियों का अतिक्रमण करके आकाश में प्रह्लाद के वंशजों को मैंने मारा था फिर भी मेरे शिर का एक बाल भी टूटने न पाया। जो मुझको जानता है, (जीवात्मा और परमात्मा के बीच, में जिसको अद्वैत भाव होता है) उसका लोक (सुख) किसी कर्म से, मातृवध से, पितृवध से, चोरे से और भ्रूणहत्या से कभी नष्ट नहीं होता। कभी वह पाप कर्म करने की इच्छा करता है तो भी उसके मुख की कान्ति फीकी नहीं पड़ती''।।२।।

स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्वायुः प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण एवामृतं यावद्ध्यस्मिञ्छरीरे प्राणौ वसति तावदायुः प्राणेन ह्येवामुष्मिंल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति प्रज्ञयां सत्यं संकल्पं स यो म आयुरमृतमित्युपास्ते सर्वमायुरस्मिंल्लोक एवाप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके।।३।।

इन्द्र बोला :– ''मैं प्राण रूप हूँ। प्रज्ञा रूप, आयुष् और अमृत रूप से मेरी उपासना कर। आयुष् प्राण रूप है, प्राण आयुष् रूप है और प्राण को अमृत से कहा है। जब तक इस शरीर में प्राण रहता है तब तक आयुष्य रहता है मनुष्य प्राण करके इस लोक में अमृतत्व को प्राप्त करते हैं और प्रज्ञा से सत्यसंकल्प को प्राप्त करते हैं। जो आयुष्य रूप और अमृत रूप से मेरी उपासना करता है वह इस लोक में पूर्ण आयुष्य को प्राप्त होता है और स्वर्ग में अमृत भाव को प्राप्त करता है और अक्षयरूप होता है।।३।।

तद्धैक आहुरेकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति न हि कश्चन शक्नुयात्सकृद्वाचा नाम प्रज्ञापयितुं चक्षुषा रूपं श्रोत्रेण शब्दं मनसा।।४।।

तब प्रतर्दन बोला ''शास्त्रवित् कहते हैं कि जब कर्मेन्द्रिय और

ज्ञानेन्द्रिय रूप प्राण एकत्र होकर गमन करते हैं तब वाणी से नाम जानने को कोई समर्थ नहीं होता। वैसे ही चक्षु रूप को, श्रोत्र शब्द को और मन ध्यान को नहीं जान सकता।।४।।

ध्यानमित्येकभूयं वै प्राणा भूत्वा एकैकं सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञापयन्ति वाचं वदन्तीं सर्वे प्राणा अनुवदन्ति चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनुपश्यन्ति।।५।।

जब प्राण एक रूप हो जाता है तब वह भिन्न-भिन्न जानने की शक्ति देता है। इस प्रकार जब वाणी बोलती है तब सब प्राण उसके पीछे बोलते हैं। जब चक्षु देखता है तब उसके पीछे सब प्राण देखते हैं।।५।।

श्रोत्रं शृण्वत्सर्वे प्राणा अनुशृण्वन्ति मनो ध्यायत् सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति प्राणं प्राणन्तं सर्वे प्राणा अनुप्राणन्तीत्येवमुहैवैतदिति हेन्द्र उवाचास्तीत्येव प्राणानां निःश्रेयसादानमिति।।६।।

जब श्रोत्र सुनता है तब उसके पीछे सब प्राण सुनते हैं और जब मन विचारता है तब उसके पीछे सब प्राण विचारते हैं। जब प्राण श्वास लेता है तब सब प्राण उसके पीछे श्वास लेते हैं।" इन्द्र बोला :—"इस प्रकार है तो सही, परन्तु उत्कृष्ट सुख तो प्राण को ही होता है।।६।।

जीवति वागपेतो मूकान्विपश्यामो जीवति चक्षुरपेतोऽ-न्धान्विपश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्विश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्न इत्येवं हि पश्याम।।७।।

हम गूंगे को देखते हैं उससे जान सकते हैं कि वाणी रहित मनुष्य जीता है, अंधे को देखकर जान सकते हैं कि चक्षु रहित मनुष्य जीता हैं. बहरे को देखकर जान सकते हैं कि श्रोत्र रहित जीता है, हाथ से रहित जीता है, तैसे ही उरू कटा हुआ जीता है।।७।।

इत्यथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिग्रह्योत्थापयति

तस्मादेतमेवोक्थमुपासीत यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा ।।८।।

इस प्रकार देखते हैं कि प्राण ही प्रज्ञात्मा रूप है, इस शरीर को धारण करके वह इसको उठाता है, इसलिये उसकी उक्थ रूप से उपासना करनी चाहिये। जो प्राण है वह ही प्रज्ञा रूप है, जो प्रज्ञा है सो प्राण रूप है।।८।।

स प्राणः सह ह्येतावस्मिञ्छरीरे वसतः सहोत्क्रामतस्तस्यैषैव दृष्टिरेतद्विज्ञानं यत्रैतत्पुरुषः सुप्तः स्वप्नं न कंचन पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति।।६।।

इस प्राण का स्वरूप इस प्रकार है :—प्राण और प्रज्ञा इस शरीर में साथ रहते हैं, उनमें से दोनों साथ ही उत्क्रमण करते हैं, यह उसकी दृष्टि विज्ञान रूप है। जब पुरुष सुषुप्ति अवस्था में होता है, जब वह कुछ भी स्वप्न नहीं देखता, उस समय प्राण एक ही प्रकार का होता है।।६।।

तदैनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुःसर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते ।।१०।।

पीछे वाणी सब नामों सहित उसमें प्रवेश करती है, चक्षु सर्व रूपों सहित उसमें प्रवेश करते हैं, श्रोत्र सब शव्दों सहित उसमें प्रवेश करते हैं और मन सर्व संकल्पों सहित उसमें प्रवेश करता है।।१०।।

यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकास्तस्यैषैव सिद्धिरेतद्विज्ञानं।।११।।

जब मनुष्य जागरितावस्था में आता है तब जैसे जलते हुए अग्नि में से सब दिशाओं में चिनगारियां उड़ती हैं वैसे ही इस आनन्द रूप

आत्मा में से सब प्राण अपने अपने स्थान पर जा जाकर बैठते हैं। प्राणों से देव और देवों से लोक होते हैं इस रीति का उसका प्रमाण और विज्ञान है।।११।।

यत्रैतत्पुरुषः आर्तो मरिष्यन्नाबल्यं न्येत्य संमोहं न्येति तदाहुरुदक्रमीच्चित्तं न शृणोति न पश्यति न वाचा वदत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति।।१२।।

कोई एक पुरुष रोगग्रस्त होता है और मरण के समीप होता है, बल से रहित होता है, भान रहित अवस्था में पड़ता है, तब उसके पास बैठने वाले कहते हैं कि उसका चित्त जाता रहा है, वह सुनता नहीं है, यह देखता नहीं है, वह वाणी से बोलता नहीं है, वह इस प्राण में एक रूप हो गया है।।१२।।

तदैनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्रारणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः।।१३।।

पीछे सब नामों सहित वाणी उसमें प्रवेश करती है, सब रूप सहित चक्षु उसमें प्रवेश करते हैं, सर्व शब्दों सहित श्रोत्र उसमें प्रवेश करते हैं और सब संकल्पों सहित मन उसमें प्रवेश करता है। जब वह जाग्रत होता है तब जैसे जलते हुए अग्नि की चिनगारियां सब दिशाओं में उड़ती हैं इसी प्रकार आनन्द रूप आत्मा में से प्राण अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं। प्राणों में से देवताओं का और देवताओं में से लोकों का उद्भव होता है।।१३।।

स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति वागस्मात्सर्वाणि नामान्यभिविसृजते वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति प्राणोऽस्मात्सर्वान्गन्धनभिविसृजते

प्राणेन सर्वान्गन्धानाप्नोति।।१४।।

जब इस शरीर में से प्राण का उत्क्रमण होता है तब शरीर से वाणी सब नामों का त्याग करती है, वाणी की सहायता से सब नामों की प्राप्ति होती है। प्राण सर्व गंधों का त्याग करता है। प्राण की सहायता से सब गंध शरीर को प्राप्त होता है।।१४।।

चक्षुरस्मात्सर्वाणि रूपाण्यभिविसृजते चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्याप्नोति श्रोत्रमस्मासर्वाच्छब्दानभिविसृजते श्रोत्रेण सर्वात्रिशब्दानाप्नोति मनोऽस्मात्सर्वाणि ध्यातान्यभिविसृजते मनसा सर्वाणि ध्यातान्याप्नोति सैषा प्राणे सर्वाप्तिः।।१५।।

चक्षु शरीर में से सब रूपों का त्याग करता है, शरीर को चक्षु से सर्व रूपों की प्राप्ति होती है। मन शरीर में से सर्व संकल्पों का त्याग करता है, मनसे उसको सर्व संकल्पों की प्राप्ति होती है। प्राण की विद्यमानता से शरीर को इन सब की प्राप्ति होती है।।१५।।

यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राण स ह्येतावस्मिन्छारीरे वसतः सहोत्क्रामतोऽथ खलु यथा प्रज्ञायां सर्वाणि भूतान्येकीभवन्ति तद्वाख्यास्यामः।।१६।।

प्राण प्रज्ञा रूप है सो प्राण है। अब जिस प्रकार प्रज्ञा में सब भूत एक भाव को प्राप्त होता है, उसका वर्णन करते हैं।।१६।।

वागेवास्या एकमंगमुदूढं तस्यै नाम परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा घ्राणमेवास्या एकमंगमुदूढं तस्य गन्धः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा।।१७।।

वाक् देवता ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय शव्द भूत मात्रा रूप से वाहर जाता रहा है। जिह्वा ने अपना एक अंश निकाल लिया इसके उसका विषय रस भूत मात्रा रूप से बाहर जाता

रहा। हाथ ने एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय सुख और दुःख मात्रा रूप से बाहर जाता रहा।।१७।।

चक्षुरेवास्या एकमंगमुदूढं तस्य रूपं परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्र श्रोत्रमेवास्या एकमंगमुदूढं तस्य शब्दः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा जिह्वैवास्या एकमंगमुदूढं तस्या अन्नरसः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा हस्तावेवास्या।।१८।।

चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा और हाथ ने अपने-अपने अंश निकाले और उनके विषय रूप, शब्द, अन्नरस और कर्म भूतमात्रा रूप से बाहर जाते रहे।।१८।।

एकमगंमुदूढं ˜तयोः कर्म परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा शरीरमेवास्या एकमंगमुदूढं तस्य सुखदुःखे परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा उपस्थ एवास्या एकमंगमुदूढं तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा पादौवेवास्या एकमंगुदूढं तयोरित्या परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा प्रज्ञैवास्या एकमंगमुदूढं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा।।१६।।

उपस्थेन्द्रिय ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय आनन्द रति और प्रजोत्पत्ति भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। पादों ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उनका विषय गति भूत मात्रा रूप से बाहर जाती रही। प्रज्ञा ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय बुद्धि, ज्ञान और काम भूत तन्मात्रा रूप से बाहर जाता रहा।।१६।।

प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि सामान्याप्नोति प्रज्ञया प्राणं समारुह्य प्राणेन सर्वान्गन्धानाप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्वाणि।।२०।।

प्रज्ञा वाणी से आरूढ़ होने से—उसी रूप बनने से—वाणी से सब नामों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से प्राण में आरोहरण होने से प्रज्ञा प्राणों से सब गंधों को प्राप्त करती हैं। प्रज्ञा से चक्षु में आरोहण होने से प्रज्ञा चक्षु से सब रूपों को प्राप्त करती है।।२०।।

रूपाण्याप्नोति प्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वान्छब्दानाप्नोति प्रज्ञया जिह्वां समारुह्य जिह्वया सर्वानन्नरसानाप्नोति प्रज्ञया हस्तौ समारुह्य हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माण्याप्नोति प्रज्ञया शरीरं समारुह्य शरीरेण।।२१।।

प्रज्ञा से श्रोत्र में ओरोहण होने से प्रज्ञा श्रोत्र से सब शब्दों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से जिह्वा में आरोहण होने से प्रज्ञा जीभ से सब रसों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से हस्तों में आरोहण होने से प्रज्ञा दोनों हाथों से सब कर्मों को प्राप्त करती है।।२१।।

सुखदुःखे आप्नोति प्रज्ञयोपस्थं समारुह्योपस्थेनानन्दं रतिं प्रजातिमाप्नोति प्रज्ञया पादौ समारुह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आप्नोति प्रज्ञयैव धियं समारुह्य प्रज्ञयैव धियो विज्ञातव्यं कामानाप्नोति।।२२।।

प्रज्ञा से उपस्थेन्द्रिय से आरोहण होने से प्रज्ञा उपस्थ से आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त करती है। प्रज्ञा से दोनों पैरों में समारोहण होने से प्रज्ञा पैरों से सर्व गति को प्राप्त करती है। प्रज्ञा में मनमें आरोहण होने से प्रज्ञा मनसे विज्ञान और काम को प्राप्त करती है।।२२।।

नही प्रज्ञापेता वाङ्नाम किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे।।२३।।

प्रज्ञा से रहित वाणी किसी नाम को भी नहीं जान सकती। उस समय ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था मैंने उस नाम को नहीं जाना।।२३।।

मनोऽभूदित्याह नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं चक्षू रूपं चिंन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतद्रूपं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं श्रोतं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेता जिह्वान्नरसं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतमन्नरसं प्राज्ञासिषमिति नहीं प्रज्ञापेतौ हस्तौ कर्म किंचन प्रज्ञपयेतामन्यत्र मे मनोज्भूदित्याह नाहमेतत्कर्म प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखदुःखं किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्सुखदुःखं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं।।२४।।

सच है कि प्रज्ञा से रहित घ्राण किसी गंध को भी नहीं जना सकता। ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था, इसलिये मैंने गंध को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित चक्षु किसी रूप को भी नहीं जना सकता वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रूप को नहीं देखा। प्रज्ञा से रहित श्रोत्र किसी भी शब्द को सुना नहीं सकता, ऐसा कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलि मैंने शब्द नहीं सुना। प्रज्ञा से रहित जीभ रस के स्वाद को नहीं जना सकती, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रस को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित हाथ किसी कर्म को नहीं जना सकता, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने कर्म को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित शरीर किसी भी सुख दुःख को नहीं जानता। ऐसे कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैं इस सुख दुःख को जान न

सका।।२४।।

प्रजातिं कंचन प्रज्ञयपयेदन्यत्र में मनोऽभूदित्याह नाहमेतामानन्दं रतिं प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतौ पादावित्यां कांचन।।२५।।

प्रज्ञा से रहित उपस्थ रति, आनन्द और प्रजोत्पत्ति को नहीं जना सकता। वह कहता है कि मेरा मन अन्यत्र था जिससे मैं आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति को जान न सका।।२५।।

प्रज्ञपयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतामित्यां प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेता धीः काचन सिध्येन्न प्रज्ञातव्य प्रज्ञायेत।।२६।।

प्रज्ञा से रहित पाद किसी गति को नहीं जना सकते वह कहता है कि मेरा मन अन्य ठिकाने था इसलिये मैं गति को जान न सका। प्रज्ञा से रहित बुद्धि किसी को नहीं जना सकती और जानने योग्य जाना नहीं जा सकता।।२६।।

न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यान्न गन्धं विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यान्न रूपं विजिज्ञासीत रूपविदं विद्यान्न शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्यान्नान्नरसं विजिज्ञासीतान्नरसविज्ञातारं विद्यान्न कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं विद्यान्न सुखदुःखे विजिज्ञासीत सुखदुःखयोर्विज्ञातारं विद्धान्नानन्दं रतिं प्रजातिं।।२७।।

मनुष्य वाणी को जानने की इच्छा न करे, वक्ता को जानना चाहिये। मनुष्य गंध जानने की इच्छा न करे गंध के ज्ञाता को जानना चाहिये। शब्द जानने की इच्छा न करे, श्रोता को जानना चाहिये। रस जानने की इच्छा न करे, रस के ज्ञाता को जानना चाहिये। मनुष्य कर्म जानने की इच्छा न करे, उसके कर्ता को जानना चाहिये। मनुष्य सुख दुःख जानने की इच्छा न करे सुख दुःख के ज्ञाता को जानना चाहिये। मनुष्य

को आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति के ज्ञाता को जानना चाहिये।।२७।।

विजिज्ञासीतानन्दस्य रतेः प्रजातेर्विज्ञातारं विद्यान्नेत्यां विजिज्ञासीतैतारं विद्यान्न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात्ता वा एता दशैव भूतमात्रा।।२८।।

मनुष्य गति को जानने की इच्छा न करे, गमन करने वाले को जानना चाहिये। मनुष्य को मन को न जानना चाहिये, मनने करने वाले को जानना चाहिये। सच ही ये दश भूत मात्रायें प्रज्ञा की अधिष्ठित हैं।।२८।।

अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अधिभूतं यद्धि भूतमात्रा न स्युर्न प्रज्ञामात्राः स्युर्यद्वा प्रज्ञामात्रा न स्युर्न भूतमात्राः स्युः।।२९।।

और प्रज्ञा की दश मात्रायें भूतों के अधिष्ठित हैं। जो भूत मात्रायें न हों तो प्रज्ञा मात्रायें न होनी चाहिये और जहां प्रज्ञा तन्मात्रायें न हों वहां भूत मात्रायें भी न चाहिये।।२९।।

न ह्यन्यतरतो रूपं किंचन सिध्येन्नो एतन्नाना तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिता एष प्राण एव प्रज्ञात्मानन्दोऽजरोऽमृतो न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कर्मणा कनीयानेष ह्येवैनं साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवैनमसाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते। एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेश्वरः स म आत्मति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात्।।३०।।

इन दोनों में से एक करके किसी रूप की भी सिद्धि नहीं होती। इस एकता का कभी विभाग नहीं होता। जैसे रथ के चक्र के आरे में नेमि रहती है और नेमि में आरे रहते हैं इसी प्रकार भूत मात्रायें

प्रज्ञा मात्रायें प्राणों में अर्पित हैं। यह प्राण ठीक प्रज्ञा रूप है, व आनन्द रूप है, वह अजर और अमृत रूप हैं वह शुभ कर्मों से महान् नहीं होता और अशुभ क़र्मों से छोटा नहीं होता। यह प्रज्ञा ठीक-ठीक जिस मनुष्य को इस लोक में से उच्च से उच्च गति को पहुंचाने की इच्छा करती है उससे शुभ कर्म कराती है। और इस लोक से जिस मनुष्य को नीच गति में पहुँचाने की इच्छा करती है उससे अशुभ कर्म कराती है। वह लोकों का पति रूप है, वह लोकों का अधिपति रूप है। यह प्रज्ञा सर्वेश्वर रूप हैं वह मेरा आत्मरूप है ऐसा जाने, मेरा आत्म रूप है ऐसा जाने।।३०।।

चतुर्थोऽध्यायः

अथ गार्ग्यो ह वै बालकिरनूचानः संस्पष्ट आस सोऽयमुशीनरेषु संवसन्मत्स्येषु कुरुपन्नचालेषु काशीविदेहेष्विति स हाजातशत्रुं ।।१।।

गार्ग्य गोत्र में बालाकि नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ। वह उशीनर में, मत्स्य देश में, कुरुपंचाल तथा काशी विदेह देश में रहा हुआ था। वह काशी के राजा अजातशत्रु के पास जाकर उससे बोला, "मैं तुझे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ।" ।।१।।

काश्यमेत्योवाच ब्रह्म ते ब्रवाणीति तं होवाचाजातशत्रुः सहस्रं दद्मस्त एतस्यां वाचि जनको जनक इति वा उ जना धावन्तीति ।।२।।

अजात शुत्रु उससे बोला "इस बात के लिये मैं तुझे एक सहस्र (गायें) देता हूँ, क्योंकि लोग जनक ही को ब्रह्म विद्या का श्रोता समझते हैं इसलिये उसी के पास लोग (ब्रह्मविद्या के वक्ता) जाया करते हैं। ।२।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा बृहन्पाण्डरवासा अतिष्ठाः ।।३।।

बालाकि बोला, "आदित्य में जो पुरुष है, उसीकी मैं (ब्रह्मरूप से) उपासना करता हूँ।" आजतशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। जो बड़ा है, शुभ्र वस्त्र परिधान करता है।।३।।

सर्वेषां भूतानां मूर्धेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा भवति।।४।।

तथा जो सब भूतों में श्रेष्ठ और उसका राजा है, उसकी मैं उपासना

करता हूँ। जो इस प्रकार उपासना करता है वह सब भूतों का राजा होता है'।।४।।

स होवाच बालाकिय एवैष चन्द्रमसि पुरुषस्तमेवाहं ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः सोमो राजान्नस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्तेऽन्नस्यात्मा भवति।।५।।

बालाकि बोला, "चन्द्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह सोम राजा है तथा अन्न का आत्मा (जीवन) है ऐसा मान कर मैं उनकी उपासना करता हूँ इस प्रकार उपासना करने वाला मनुष्य अन्न का आत्मा होता है; यानी उसे अन्न की कमी नहीं होती"।।५।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष विद्युति पुरुष एतेवाहं ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठास्तेजस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते तेजस आत्मा भवति।।६।।

बालाकि बोला, "जो विद्युत् में पुरुष है उसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ।" तब अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह तेज का आत्मा है ऐसा मानकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार उपासना करता है वह तेज का आत्मा होता है"।।६।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष स्तनयित्नौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः शब्दस्यात्मेतिवा अहमेतमु पास इति स यो हैतमेवमुपास्ते शब्दस्यात्मा भवति।।७।।

बालाकि बोला, "मेघ गर्जना में जो पुरुष है उसकी मैं ब्रह्मरूप

से उपासना करता हूँ।" उससे अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझमें संवाद मत कर। वह शब्द का आत्मा है ऐसा जान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह शब्द का आत्मा होता है"।।७।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष आकाशे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः पूर्णमप्रवर्ति ब्रह्मेति वा अहमेतमुपास।।८।।

बालाकि बोला, "आकाश में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह पूर्ण और प्रवृत्ति रहित ब्रह्म है ऐसा जानकर मैं उसकी उपासना करता हूँ।।८।।

इति स यो हैतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिर्नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालात्प्रवर्तते।।६।।

इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है वह प्रजा और पशुओं से पूर्ण (संपन्न) होता है। वह स्वयं अथवा उसकी प्रजा योग्य काल के पूर्व मरण को प्राप्त नहीं होती"।।६।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष वायौ पुरुषस्त मेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा इन्द्रो।।१०।।

बालाकि ने कहा, "वायु में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ" उससे अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह वैकुण्ठ (महा पराक्रमी) इन्द्र है तथा पराजय न होने वाली सेना है।।१०।।

वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते जिष्णुर्ह वा पराजिष्णुरन्यतस्त्य जायी भवति।।११।।

ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला विजयी दुर्जय तथा शत्रुओं को जीतने वाला होता है" ।।११।।

स होवाचबालाकिर्य एवैषोऽग्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठ विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते विषसहिर्वा एष भवति।।१२।।

बालाकि बोला, "अग्नि में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशुत्रु ने कहा, 'इस संबंध में तू मुझसे संवाद मत कर। वह प्रबल है ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह प्रबल होता है" ।।१२।।

स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽप्सु पुरुषस्त मेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा नाम्न आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतेवमुपास्ते नाम्न आत्मा भवतीत्यधिदैवतमथाध्यात्मम्।।१३।।

बालाकि बोला, "जल में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर यह नाम स्वरूप (अथवा तेज स्वरूप) है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है वह नाम स्वरूप (अथवा तेज स्वरूप) होता है।" इतना देवता सम्बन्धी हुआ, अब शरीर सम्बन्धी कहते हैं।।१३।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष आदर्शे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य

प्रजायामाजायते नाप्रतिरूपः । ।१४ । ।

बालाकि बोला, "आदर्श (आईना) में दीखने वाला जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवादं मत कर। इसको प्रतिरूप समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ, इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है उसके घर में उसी के समान रूपवाला पुत्र उत्पन्न होता है उसके समान रूप न हो ऐसा पुत्र नहीं उत्पन्न होता । ।१४ । ।

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्रतिश्रुत्कायाः पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्ममैतस्मिन्स संवादयिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते विन्दते द्वितीयाद्द्वितीयवान्भवति । ।१५ । ।

बालाकि बोला, "प्रतिध्वनि में जो पुरुष होता है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजात्तशत्रु बोला, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। मैं इसको द्वितीय तथा कभी अलग न होने वाला ऐसा जानकर इसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है। उसको द्वितीय से (पत्नी से) द्वितीय पुत्र प्राप्त होता है" । ।१५ । ।

स होवाच बालाकिर्य एवैष शब्दः पुरुषमन्यवेति तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजात शत्रुर्ममैतस्मिन्समवादयिष्ठा अंसुरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुराकालात्संमोहमेति । ।१६ । ।

बालाकि बोला, मनुष्य के चलने में जो शब्द होता है, उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजातशत्रु ने कहा इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। मैं उसकी प्राण समझ कर उपासना करता हूँ—जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह अथवा उसकी प्रजा योग्य समय के पहिले

नहीं मरती।।१६।।

स होवाच बालाकिर्य एवैषछायायां पुरुषस्तमेवाह मुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठमृत्युरिति वा अहमेतुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालात्प्रमीयते।।१७।।

बालाकि बोला, "छाया में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजातशत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। उसको मृत्यु समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह अथवा उसकी प्रजा योग्य समय से पहले मृत्यु को प्राप्त नहीं होती।।१७।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष शारीरः पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः प्रजापतिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रजायते प्रजया पशुभिः।।१८।।

बालाकि बोला, "शरीर में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ" अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद न कर। उसको प्रजापति समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है उसकी प्रजा और पशु वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।१८।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्राज्ञ आत्मा येनैतत्पुरुषप्तः स्वप्नमाचरति तमेवाहमुपास इति।।१९।।

बालाकि बोला, "जो प्राज्ञ आत्मा है और जिससे सोया हुआ पुरुष स्वप्न में भ्रमण करता है उस आत्मा की मैं उपासना करता हूँ"। अजातशत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर।।१९।।

तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा यमो राजेति वा

अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते सर्वं हास्मा इदं श्रैष्ठ्याय गम्यते।।२०।।

वह राजा यम है ऐसा समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है उसकी श्रेष्ठता को सब कोई स्वीकार करते हैं"।।२०।।

स होवाच बालाकिर्य एवैष दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा नाम्न।।२१।।

बालाकि बोला—दाहिने नेत्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजातशत्रु ने कहा—"इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर।।२१।।

आत्माग्नेरात्मा ज्योतिष आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्त एतेषं सर्वेषामात्मा भवति।।२२।।

यह पुरुष नाम का आत्मा, अग्नि का आत्मा तथा तेज का आत्मा है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह इन सबका आत्मा होता है"।।२२।।

सहोवाच बालाकिर्य एवैष सव्येक्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः सत्यस्यात्मा विद्युत आत्मा तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासस्त एतेषा सर्वेषामात्मा भवतीति।।२३।।

बालाकि बोला—"बाएं नेत्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ"। अजात शत्रु ने कहा—"इस विषय में तू मूझमे संवाद मत कर। यह पुरुष सत्य का आत्मा, विद्युत का आत्मा तथा तेज का आत्मा है, ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला पुरुष इन सबका आत्मा होता है।।२३।।

तत उ ह बालाकिस्तूष्णीमास तं होवाचाजातशत्रुरेतावन्नु बालाकीति एतावद्धीति होवाच बालाकिस्तं होवाचाजातशत्रुर्मृषा वै किल मा समवादयि।।२४।।

इस पर बालाकि चुप हो गया। तब अजातशत्रु ने कहा—"क्या इतना ही तू जानता है"? गार्ग्य ने कहा—"इतना ही जाना है"। अजातशत्रु बोला—"मैं तुझसे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ।।२४।।

ब्रह्म ते ब्रवाणीति होवाच स यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत्कर्म स वेदितव्य इति।।२५।।

ऐसा कह कर वृथा ही तू मुझसे संवाद करने को आया है। हे बालाकि, इन सब पुरुषों का जो कर्त्ता है, उसी ने यह विश्व उत्पन्न किया है और वही एक जानने के योग्य है।।२५।।

तत उ ह बालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रामोपायानीति तं होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमरूपमेव स्याद्यक्षत्रियो ब्राह्मणमुपनयीतैहिव्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं ह पाणावभिपद्य प्रवव्राज।।२६।।

तदनन्तर हाथ में समिधा ग्रहण करके बालाकि उसके पास जाकर बोला—"मैं तेरे पास (शिष्य भाव से) आया हूँ"। अजातशत्रु ने कहा—"क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश दे यह अयोग्य होगा। चल मैं तुझे समझाता हूँ"। "पश्चात् उसका हाथ पकड़ कर वह चलने लगा।।२६।।

तौ ह सुप्तं पुरुषमीयतुस्तं हाजातशत्रुरामन्त्रयांचक्रे बृहन्पाण्डरवासः सोमराजन्निति स उ ह तूष्णीमेव शिश्ये तत उ हैनं यष्ट्या विचिक्षेप स तत एव समुत्तस्थौ तं।।२७।।

वे दोनों एक सोये हुए पुरुष के पास गये। अजातशत्रु ने पुकारा—"हे ब्रह्मन् शुद्ध वस्त्र वाले! हे सोम राजन्! परन्तु वह चुप

रहा। पश्चात् उसने उसको हिला के जगाया-तब वह उठ कर खड़ा हुआ।।२७।।

होवाचाजातशत्रुः क्वै एतद् बालाः लोके पुरुषोऽशयिष्ट क्वैदभूत्कुत एतदागादिति तदु ह बालाकिर्न विजज्ञौ तं होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट यत्रैतदभूद्यत एतदागाद्धिता नाम हृदयस्य नाड्यो हृदयात्पुरीततमभिप्रतन्वन्ति तद्।।२८।।

तब अजातशत्रु बोला—"यह पुरुष कहां सोया थ, वह कहां था और इस प्रकार से वह कहां से आया? बालाकि यह नहीं जानता था। इस पर अजात शत्रु "बोला वह पुरुष कहां था और कहां से इस प्रकार· आया-इसका उत्तर यह है-हृदय में हिता नाम की नाड़ियां उस पुरुष के हृदय से पुरीतत तक फैली हुई है।।२८।।

यथा सहस्रधा केशा विपाटितस्तावदण्व्यः पिंगलस्याणिम्ना तिष्ठन्ते शुक्लस्य कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्येति तासु तदा भवति यदा सुप्तः स्वप्नं न कंचन पश्यत्यस्मिन्प्राण एवैकधा भवति।।२६।।

एक बाल के सहस्र भाग के समान ये नाड़ियां सूक्ष्म हैं। इनमें शुभ्र, काला, पीला और लाल इस प्रकार के अनेक रंग का रस भरा रहता है। मनुष्य सोने पर स्वप्न नहीं देखता तब वह इन नाड़ियों में होता है। इस समय वह प्राण के साथ एक रूप होता है।।२६।।

.तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः साहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति।।३०।।

वाणी सब नामों को लेकर इस समय उसको प्राप्त होती है। फिर चक्षु सम्पूर्ण आकार लेकर उसको प्राप्त होता है। कर्ण सब शब्द लेकर उसको प्राप्त होता है। मन सम्पूर्ण विचार लेकर उसको प्राप्त होता

है। ।३०। ।

स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फलिंगा विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते। ।३१। ।

जब यह जाग उठता है तब जैसे जलती हुई अग्नि से चारों तरफ चिनगारियां उठती हैं वैसे ही उस आत्मा से प्राप्त (वाणी इत्यादि) बाहर निकल कर अपने अपने स्थान पर जाते हैं। ।३१। ।

प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकस्तद्यथा क्षुरः क्षुरधाने हितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाय एवमेवैष प्राज्ञ आत्मेदं शरीरमनुप्रविष्ट आ लोमभ्य आ नखेभ्यः। ।३२। ।

प्राण से देवता और देवताओं से लोक बाहर निकलते हैं और जिस प्रकार छुरी के घर में छुरी रहती है अथवा अग्नि कुण्ड में अग्नि रहती है इसी प्रकार यह प्राज्ञ आत्मा चोटी से पैर के नख तक शरीर में प्रवेश करता है। ।३२। ।

तमेतमात्मानमेताआत्मानोऽन्ववस्यन्ति यथा श्रेष्ठिनं स्वास्तद्यथा श्रेष्ठीः स्वैर्भुंक्ते तथा वा श्रेष्ठिनं स्वा भुन्नजन्ति एवमेवैष प्राज्ञ आत्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते। यथा श्रेष्ठी स्वैरेवं वैतमात्मानमेत आत्मानोऽन्ववस्यन्ति यथा श्रेष्ठिनं स्वाः स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न विजज्ञौ तावदेनमसुरा अभिबभूवुः स यदा विजज्ञावथ हत्वाऽसुरान्विजित्य सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति तथा एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं पर्येति य एवं वेद य एवं वेद। ।३३। ।

। ।इति चतुर्थोऽध्यायः। ।४। ।

ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः। ।

।।कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता।।

जैसे किसी सेठजी के पीछे उसके सेवक जाते हैं वैसे ही (वाणी आदि) सब आत्मा के पीछे जाते हैं। जिस प्रकार- प्रधान पुरुष अपने स्वजनों के साथ भोजन करता है वैसे ही यह प्राज्ञ आत्मा इन आत्माओं के साथ भोजन करता है। तथा लोक धनी का अनुसरण करते हैं वैसे ही यह इतर आत्मा इस आत्मा का अनुकरण करते हैं। जब तक इन्द्र को इस आत्मा का ज्ञान नहीं था तब तक वह असुरों से जीता गया—परन्तु जब उसको इसका ज्ञान हुआ तब उसने असुरों को जीत लिया तथा उसको समस्त देवताओं में श्रेष्ठता, स्वराज्य और आधिपत्य की प्राप्ति हुई। वह सम्पूर्ण प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य को प्राप्त होता है—जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है।।३३।।

।। इति कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत् समाप्ता।।